बडी मेरी दो वहनें उर्मिल व निर्मला हैं। हम चार भाई व तीन वहनें हैं। हमारा परिवार एक प्रतिष्ठत परिवार है। इसका व्यापार क्षेत्र में अपना प्रसिद्ध स्थान है।

मेरे बाबा दीर्घायु थे। वह दानी व परउपकारी थे। उन्होंने अपना एक मात्र घर भी एक भाई को दान कर दिया। उन का चरित्र उनका इतना निर्मल था कि उन्होंने समस्त जीवन शुद्ध शाकाहार को ध्यान में रखा। उन्होंने अनेकों ग्रामीणों का मांस व शराब का परित्याग करवाया।

शराब से नफरत :

वे शराब से बेहद नफरत करते थे। इसी कारण से उनकी संतान इस बुराई से बची रही। "एक वार उनको चोट लगी तो लोगों ने कहा जख्म पर शराब लगाओ। जख्म ठीक हो जाएगा।" पर बावा जी वृद्धावस्था में तकलीफ झेलते रहे, पर उन्होंने शराव का प्रयोग नहीं किया। यह थी उनकी अपने सिद्धांतों के प्रति आस्था। वह प्रमाणिक व नैतिक जीवन जीने में विश्वास रखते थे।

इन्हीं वातों का वर्णन मैने एक वार ज्ञानी जैल सिंह जी (भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति) से किया। तो वह प्रसन्न हुए। स्वः साध्वी स्वर्ण कांता जी की प्रेरणा से हमारी समिति ने उनकी स्मृति में एक अवार्ड की स्थापना की। जिस का नाम अहिंसा व मानवता के अवतार भगवान महावीर जी के नाम पर रखा गया। इस एवार्ड का नाम था 'इंटरनैशनल महावीर जैन शाकाहार अवार्ड"।

मेरा बचपन :

मेरा बचपन आम बच्चों की तरह था। इस में कुछ भी असमान्य नहीं था। मेरा पालन पोषण मेरे माता-पिता ने वहुत ही धार्मिक वातावरण में किया। मुझ पर उन्होंने

इतना कठोर अनुशासन रहा है कि मैं कोई बात उन्हें पूछे विना नहीं करता था। आज भी हर बात उन्हें बता कर करता हूं। ताकि कहीं किसी कार्य में त्रुटि न रह जाए। मैने अपने माता-पिता को अपनी बुद्धि के अनुसार चाहा है। पर मैं यह नहीं कह सकता कि मैं उनके लिए कुछ कर पाया हूं। माता-पिता का उपकार चुकाया नहीं जा सकता। यह श्रपण भगवान महावीर जी का कथन है। मेरे को यह कथन पूर्ण तथ्य पर लगता है। प्रभु महावीर कहते हैं "कोई व्यक्ति दिन रात्रि माता-पिता की सेवा करे, उन्हें कंधे पर उठा कर घूमता फिरे, उनकी हर बात को पूरा करे, फिर भी माता-पिता का उपकार नहीं चुका सकता।" कुरआन ने कहा है "मां के पांव के नीचे जन्नत है" जिस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए धर्म कर्म-कांड होता है उस से ज्यादा तो अपने घर में माता-पिता के दर्शन व सेवा से प्राप्त हो जाता है।

मेरे पिता शुरू से सादगी पसंद हैं। वह व्यर्थ क्रियाओं के विरोधी हैं। सच्चे साधुओं के प्रति समर्पित हैं। सादगी व संयम उनके जीवन के हर कार्य में झलकता है। हम उनके पद चिन्हों पर चल कर ही सफलता प्राप्त कर पाते हैं। उनका जीवन प्रमाणिक जीवन है। उनकी करनी व कथनी में अंतर नहीं है। उनके फैसले अटल होते हैं। वह सारे काम परिवार के विमर्श से सम्पन्न करते हैं। इस लिए सभी सदस्य उनका कहना मानते हैं।

मेरे पिता जी अपने व्यापार में प्रमाणिकता रखते रहे हैं। वह ऐसा करने में मुझे भी प्रेरणा देते रहे हैं। उन्होंने जीवन में अनेकों उतार चढाव देखे, पर उन्होंने कभी भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया।

मेरी माता धर्म परायण महिला हैं। वचपन से हम उन्हें देखते आए हैं कि वह प्रातः उठती हैं उठ कर

मन्दिर जाना उन के जीवन का अंग है। साधु, साध्वीयों को सन्मान करता, उन्हें भोजन कराना और सेवा करना वह अपना धर्म समझती हैं। वह दान, शील, तप व भावना की साकार मूर्ति हैं। धर्म उनके अंग अंग में घटित होता है। जैन साधु साध्वीयों के प्रवचन सुनना व समायिक करना उनकी दैनिक चर्या है। वह स्पष्टवादी व सत्यवादी हैं। हर मेहमान का सन्मान करना, तो उन से सीखा जा सकता है। माता के संस्कार ही संतान को संस्कार प्रदान करते हैं। वह गरीब की मदद करना अपना धर्म समझती हैं।

मेरे माता पिता ने मेरे पर परम उपकार है कि उन्होने वचपन मुझे कभी किसी वस्तु की कमी का एहसास नहीं होने दिया। उन्होनें मेरी शिक्षा दीक्षा का पूर्ण ध्यान रखा। मेरे पिता मेरा चरित्र व संस्कार के प्रति पूर्ण सजग थे। वह इस वात का ध्यान रखते थे कि मैं गलत संगत में न पड़ जाउं। मेरे माता-पिता का यह आशीवाद ही था कि मैं आज इस रूप में समाज के सामने हूं।

मेरा वचपन साधारण वच्चों की तरह था। मेरे माता पिता की इच्छा थी कि मैं पढ़ लिख कर कुछ वन सकूं। इस दृष्टि से मुझे अच्छे स्कूल में दाखिल करवाया गया। पर मुझे स्कूल के नजदीक रखा जाता, जो मेरे घर के करीव होता। मेरे माता पिता के अतिरिक्त, मेरे अध्यापक भी परम कृपालु थे। मेरी श्रद्धा का केन्द्र थे। यह अध्यापक वच्चे को अपने पुत्र की भांति शिक्षित करते थे। वह जमाना ही ऐसा था जब प्राईवेट स्कूलों में अध्यापक अपने विद्यार्थीयों पर पूरा ध्यान देते थे। बच्चों का परिणाम अच्छा हो इस लिए अतिरिक्त समय भी लगाते थे। तनख्वाह कम होती थी। पर स्कूल का परिणाम आर्दश होता था। वातावरण पूर्णतयः धर्मिक होता था। मुझे एस. डी. स्कूल व आर्य स्कूल में पढ़ने

का सौभाग्य मिला। मुझे इन अध्यापकों से बहुत स्नेह मिला। स्कूल के टाईम में मेरा कोई उल्लेखनीय मित्र नहीं था। मैं अपने तक ही सीमित था। मेरे माता-पिता का मेरे प्रति बहुत ध्यान रहा।

मेरी दैनिक चर्या संक्षिप्त थी। मेरे मित्र मेरे मुहल्ले के लोग थे। हमारे मुहल्ले में लोग आपसी सहयोग से रहते थे। परस्पर प्यार था। वह समय था जब पडोसी के बच्चे को अपना बच्चा समझा जाना मुहल्ले की विशेषता थी। यह विशेषता ही मेरे चरित्र निर्माण में मेरे बाल्यकाल से महत्त्वपूर्ण रही। माता पिता के स्वाभाव अध्यापक की अच्छी संगत व मुहल्ले के वातावरण ने मुझे धर्म के प्रति बढने की ओर प्रेरित किया। हमारे मुहल्ले में जैन मुनियों व साध्वीयों का आगमन रहता था। कभी कभी यह मुनि व साध्वीयां हमारे घर भोजन के लिए पधारते। भोजन के साथ साथ हमें प्रवचन में आने की प्रेरणा देते थे। उस समय मुझे धर्म का विशेष ज्ञान नहीं था। परन्तु घर का वातावरण इतना आदर्शक था कि जैन साधु, साध्वीयों को देखते ही मेरे पैर उनके चरणों में शीश झुकाने को बढ़ जाते। यह धर्म के प्रति श्रद्धा की शुरूआत थी जो आगे चल कर धर्म अध्ययन का कारण बनी।

यह आस्था के बीज थे। जो श्रद्धा के रूप में विकसित होने लगे थे। आज मैं सोचता हूं कि मनुष्य के व्यक्तित्त्व निर्माण में समाज को कितना बडा हाथ होता है ? समाज मनुष्य को नई पहचान देता है। उस के जीवन को भी आगे बढाने व भविष्य निर्माण में परिवार, स्कूल, मुहल्ले के अच्छे वातावरण व समाज का प्रमुख हाथ रहता है। अच्छा वातावरण मनुष्य को स्वास्थ्य समाज प्रदान करता है। इस वातावरण का अहसान मेरे भावी जीवन का कारण बना है।

यह मेरे बचपन की अनुभूतियों के कुछ अंश हैं।

अहिंसा का बीजारोपण :

श्रमण भगवान महावीर जिस धर्म को उतकृष्ट मंगल कहा है। वह धर्म कौन सा है अहिंसा, संयम व तप। जो इस धर्म का पालन करता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। ऐसा श्री दशवेंकालिक सूत्र का कथन है। श्री सूत्रकृतांगसूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है।

इसी तरह प्रश्न व्याकरण सूत्र में अहिंसा के लिए अनेकों पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग हुआ है। महाभारत में महार्षि वेद व्यास जी ने अहिंसा को परम धर्म कहा है। इस्लाम में परमात्मा को रहम करने वाला रहीम कहा गया है। वोद्ध धर्म व ईसाई धर्म मे करूणा व सेवा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल में अनेकों भक्त हुए। जिन्होंने अहिंसा का प्रचार किया। अहिंसा को पाप कृत्य घोषित किया। वर्तमान समय में अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर अहिंसा को प्रमुख स्थान महात्मा गांधी ने दिलाया। उनकी अहिंसा को गांधी दर्शन के नाम से जानते हैं।

बचपन से ही मुझे जिस बात से नफरत रही है वह है हिंसा। हिंसा कहीं भी हो, कैसी भी हो, हिंसा है। हिंसा अनुमोदनीय नहीं हो सकती। यही कारण था कि बचपन में जब कभी मैं बाहर खेलने जाता तो पाता कि कुछ लड़के गुलेलबाजी करते थे। वे छोटे पक्षियों का बिना कारण शिकार करते थे। मुझे ऐसे शिकारीयों से नफरत थी। ऐसी हिंसा मेरे मन में कई तरह के प्रश्न उत्पन्न करती थी। मैं सोचता था कि इन निरिह प्राणीयों को बिना दोष क्यों सजा मिल रही है। इन छोटी छोटी घटनाओं ने मेरे बाल मन पर अहिंसा के

बीज अंकुरित करने शुरू कर दिये। मुझे उन लोगों से भी घृणा होने लगी जो पशुओं पर शक्ति से ज्यादा भार लाद कर इन्हें पीटते। गरीव का शोषण करते। यह छोटी छोटी वातें थी जिन्हें मेरे मन पर गहरा प्रभाव होता। मैं अहिंसा दर्शन की और प्रभावित हुआ। स्कूल का समय तो खेल कूद में वीत जाता। इस तरह स्कूल के समय से ही अहिंसा धर्म की और अग्रसर होने लगा।

शिक्षा :

मैने १९६३ में मैट्रिक की परीक्षा पूर्ण की थी। उस के वाद कस्तूरवा शिक्षण संस्थान राजपुरा का कार्यक्रम वना। चाहे इस स्थान पर मेरा मन नहीं लगा, फिर भी वहां मेरे मन को गांधीवाद ने काफी प्रभावित किया। मुझे लगा कि गांधीवाद और प्रभु महावीर की अहिंसा एक सिक्के के दो पहलु हैं। जहां मेरा मन नहीं लगा। मात्र कुछ माह के वाद मैं घर आ गया क्यों कि कालेजों में दाखिला वंद हो चुका था। मेरे को कभी भौतिक वाद प्रभावित न कर सका है। मेरे पिता जी गांधी वादी विचारों से प्रभावित हैं। मैंने देश के स्वतंत्रता अंदोलन में महात्मा गांधी के अहिंसक योगदान को समझा। मुझे इस आश्रम में अभूतपूर्व ज्ञान मिला। मेरा यह विश्वास पक्का हो गया कि जैन साधू ही अहिंसा का सच्चा रूप हैं चाहे अन्य धर्मों में अहिंसा के अंश पाये जाते हैं पर जिस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने अहिंसा दर्शन प्रस्तुत किया है। वह संसार के प्रत्येक जीव के लिए अभूतपूर्व हैं। २६०० वर्ष बीत जाने पर भी उनकी अहिंसा जीवत है, शाश्वत है, वा जागृत है। यह वर्ष घर में रहकर व धर्म चर्चा (मुनि दर्शन) व समाज को समझने में वीता। इस समय कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई।

नौकरी :

१९६८ में मैंने पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ के माध्यम से बी. ए. की परीक्षा सरकारी कालेज, मालेरकोटला से उत्तीर्ण की। परीक्षा समाप्त होते ही मुझे पंजाब लैंड मोर्टगेज बैंक मालेरकोटला में नौकरी प्राप्त हो गई।

यह नौकरी मेरी अहिंसा की दूसरी परीक्षा थी। यह बैंक किसानों का बैंक है। मुझे इस माध्यम से अपने किसान भाईयों की सेवा का अच्छा अवसर मिला। यह बैंक का कार्य पग पग दोषपूर्ण था जिस से मुझे बचना था। इस स्थान पर भ्रष्टाचार व्याप्त था। शराब व मांस का सेवन आम था। इन सबसे मैंने स्वयं को कैसे बचाया, यह तो मैं स्वयं भी नहीं जानता। पर आज जब अपने १७ वर्ष बैंक में गुजारे सालों के बारे में सोचता हूं तो पाता हूं कि इस हालत में मैं किसी महापुरूष के आर्शीवाद से ही स्वयं को बचा पाया हूं, नहीं तो मैं आज ऐसा ना दीखता, जैसा दिखाई देता हूं।

यह बैंक मेरे लिए तीर्थ स्थान से कम नहीं रहा। जहां से मैंने बहुत कुछ पाया। बैंक के समय से ही धर्म की शरण में आ चुका था और यह भी सत्य है कि जो धर्म की शरण में आता है, धर्म उस का शरणागत बनता है। यह बैंक मेरी कर्म स्थली व धर्म स्थली बन गया। सबसे बड़ी बात मैं हर तरह के लोगों के परिचय में आया। मुझे व्यवहार धर्म का ज्ञान हुआ।

प्रकरण - २

जैन श्वेताम्बर तेरापंथ की आचार्य परम्परा

वचपन में तो धर्म की वात कम समझ में आती थी पर धर्म के साथ जुड़े तो धर्म की यात्रा का वहुआयामी सफर शुरू हुआ। अव धर्म ही मेरी आस्था का सफर था। मैं शुरू में इतिहास का विद्यार्थी रहा हुं। जिस सम्प्रदाय में मैंने सर्वप्रथम माना, उसका इतिहास जानने की चेष्टा भी की है। जव हम श्री उतराध्ययन सूत्र के अनुवादक का सम्पादन कर रहे थे तव मैने जाना कि जैन धर्म के दो सम्प्रदाय प्राचीन काल से चले आ रहे हैं : १. अचेलक (वस्त्र रहित) २. सचेलक (वस्त्र सहित)। भगवान महावीर के निर्वाण के ६०० साल तक सारी विचार धारा, संस्कृति एक थी। पर आचार्य कुन्दकुन्द के समय जैन धर्म के सम्प्रदाय क्रमशः दिगम्वर व श्वेताम्वर कहलाए। तव से श्वेताम्वर व दिगम्वरों में सिद्धांतिक मतभेद शुरू हो गए। यह मतभेद वडे मामूली स्तर के थे। ऐसी मान्यता भी है कि दिगम्वर व श्वेताम्वर सम्प्रदाय का समन्वय यापनीय संघ का निर्माण हुआ। जो वाद में दिगम्वर सम्प्रदाय का भाग वन गया। अकेले श्वेताम्वर सम्प्रदाय में ८४ गच्छ पैदा हो गए। फिर चैत्यवादीयों का युग शुरू हुआ। नए ग्रंथों का निर्माण हुआ। भगवान् महावीर के सिद्धांतों को सव ने भूला दिया। जिस ब्राहमण वादी परम्परा को छोडा था उसे किसी न किसी रूप में अपनाया जाने लगा। धर्म के नाम पर एक दूसरे को मिथ्यात्वी कहा जाने लगा। इन्हीं मतभेदों के कारण दोनों सम्प्रदायों में कई नए सम्प्रदायों को जन्म दिया। जिसने जैन

धर्म को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया। आज श्वेताम्बर पूजकों में और दूसरा अमुतिपूजक सम्प्रदाय स्थानक वासी हैं। इसी स्थानकवासी सम्प्रदाय से निकला है तेरापंथ। इस पंथ के संस्थापक आचार्य भिक्षु जी महाराज थे। आप आचार्य रघुनाथ जी के शिष्य थे।

इसी तरह दिगम्बर सम्प्रदाय में तारणपंथ, वीस पंथ, तेरहपंथ निकले। गुजरात में पूज्य श्री कान जी स्वामी ने एक नया सम्प्रदाय चलाया। जिस का सारे गुजरात में अच्छा प्रचार हुआ। पर इतिहासक दृष्टि से जैन धर्म का सव से नवीनतम सम्प्रदाय श्वेताम्बर तेरहपंथ है। इस सम्प्रदाय के साधु, साध्वी व आचार्य विद्वान रहे हैं। तेरह पंथ सम्प्रदाय की एक विशेषता अनुशासन है। तेरहपंथ में अधिकांश साधु साध्वी राजस्थान अथवा हरियाणा के ओसवाल हैं। मैं सर्वप्रथम इसी सम्प्रदाय के साधुओं की शरण में आना। मैं इस अध्याय के माध्यम से तेरहपंथ धर्म संघ के आचार्यों का परिचय प्रस्तुत कर रहा हूं। इस सम्प्रदाय के सभी आचार्यों के जीवन पर दृष्टि डालेंगे। ताकि पाठकों इस सम्प्रदाय के आचार्यों के बारे में जानकारी मिल सके।

आचार्य श्री भिक्षु जी :

जैसे पहले लिखा जा चुका है कि आप ने ही जैन श्वेताम्बर तेरहपंथ की स्थापना की थी। आप का जन्म कटांलिया (जोधपुर) के श्रावक बल्लु जी संकलेचा व माता दीपाबाई के यहां संवत् १७८३ शुकल त्रयोदश में हुआ। वचपन से ही आप ओजस्वी शिशु थे। वैराग्य आप के शरीर के कण कण में समाया हुआ था। पहले वह पोतियावंध सम्प्रदाय की ओर अग्रसर हुए। स्वयं को असंतुष्ट पा कर आप ने स्थानक वासी आचार्य श्री रघुनाथ को सुना। आचार्य भिक्षु की शादी अल्पायु में हो गई थी।

आप की पत्नी आपके रास्ते की रूकावट नहीं वन सकी। आप शीघ्र ही माता पिता व अन्य स्वजनों की आज्ञा से आचार्य श्री रघुनाथ जी महाराज के शिष्य वन गए। आप की दीक्षा २५ वर्ष की आयु में वगड़ी में हुई। गंभीर शास्त्र अभ्यास किया। गुरू की कृपा, आप पर हमेशा रहती थी। गुरू को भी अपने शिष्य की बुद्धि व ज्ञान पर गर्व था।

उस समय साधु समाज में कुछ वातें ऐसी आ गई थी जो शास्त्रों के अनुकूल नहीं थी। गुरू शिष्य के मध्य इन विचारों में मतभेद हो गया। गुरू से कोई समझौता न हो पाया तो १३ साधुओं के साथ आप ने स्थानक छोड़ दिया। वह जोधपूर आये। एक दुकान में ठहरे। सौभाग्य से वहां १३ श्रावक वैठे समायिक कर रहे थे। वहां श्री फातेहचन्द जी दीवान गुजरे। साधु व श्रावकों को देखा। फिर कहा अच्छा संयोग वना है। तेरह साधु व तेरह श्रावकों के पास ही भोजक जाति का एक कवि गुजर रहा था उस ने एक दोहा रचा। इस दोहे में साधुओं को तेरहपंथी कहा गया था। आचार्य भिक्षु को यह दोहा पसंद आया। उन्होंने कहा सत्य है। "हे प्रभु ! यह तेरा पंथ है। तात्विक दृष्टि से उन्होंने वताया "जो ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति का पालन करता है वह तेरहपंथी है।"

आचार्य श्री भिक्षु क्रांतिकारी आचार्य थे। उन्होंने कुछ सुधार अपने सम्प्रदाय में किए। वह महान तपस्वी थे। वह लोगों की जन भाषा राजस्थानी में धर्म प्रचार करते थे। सारा राजस्थान, मध्यप्रदेश उनका प्रचार क्षेत्र था। उन्हें राजस्थानी भाषा के सव से महान कवि होने का गौरव प्राप्त है। वह महान विचारक व कुशल आचार्य थे। उन्होंने अपनी परम्परा को स्थापित करने के लिए एक मर्यादा पत्र लिखा। जो इस संघ का विधान है।

इस महान दार्शनिक संत का देवलोक संवत १८६० भाद्र शुक्ल त्रयोदशी को सिरियारी में ७७ वर्ष की आयु में हुआ। उन्होंने ५५ से अधिक ग्रंथों की रचना राजस्थानी भाषा में की । यह ग्रंथ आपके सूक्ष्म ज्ञान का प्रतीक हैं।

उन्होंने संसार को अनुशासन का पाठ पढ़ाया। सभी साधु साध्वीयों को एक आचार्य को ही गुरू मानने की आज्ञा दी। किसी को अलग गुरू कहलवाने से रोका। हर क्रांतिकारी की तरह आचार्य भिक्षु के कुछ विचारों का व्यापक स्तर पर विरोध हुआ। इन विचारों के आचार्य भिक्षु व उनके सम्प्रदाय को जैन धर्म में अलग पहचान मिली। आचार्य भिक्षु का सारा जीवन ही संघर्षमय था। पर उन्हें अपने सम्प्रदाय के लोगों के माध्यम से लोगों में काफी सन्मान भी मिला है।

द्वितीयाचार्य श्री भारमल जी :-

दूसरे आचार्य श्री भारमल का जन्म मेवाड़ के मुवो गांव में लोढ़ा परिवार में संवत १८०३ में हुआ। आपके पिता किसनों जी व माता धारणी श्रमण संघ के प्रति समर्पित थे।

आप ने अपने पिता के साथ संयम अंगीकार किया। यह घटना नागोर में घटी। फिर आप ४ वर्ष बाद आचार्य श्री भिक्षु के परिवार के सदस्य बन गए। उनके समय १३ की संख्या घट कर मात्र ६ रह गई थी।

आचार्य श्री भारमल जी को भी आचार्य भीखन की तरह कष्टों का सामना करना पड़ा। आप का जीवन चमत्कारों का खजाना है। संवत् १८३२ में मृगशिरा को आप आचार्य पद सुशोभित हुए। जीवन में ४४ व्यक्तियों को संयम पंथ पर लगाया। आपका जीवन उतार चढाव से भरा पड़ा है। राजनगर में आपका देवलोक हुआ।

तृतीया आचार्य श्री रायचंद जी :

आप का जन्म संवत १८४७ में शवलीदा गांव में श्रावण चतुरोजी व माता कुशली जी के यहां हुआ। आप का धर्म से ओत प्रोत परिवार में थे। ११ वर्ष की आयु में आप साधू बने । आप के साथ आप के पिता भी साधू बने। ३ वर्ष आचार्य भिक्षु के सानिध्य में रहकर आगमों का अध्ययन किया। संवत् १८५७ में आप साधु बने। संवत १८७७ में युवाचार्य पद पर आरूढ़ हुए। आचार्य श्री भारमल जी के पश्चात् आप आचार्य के पद पर सुशोभित हुए।

संवत १९०८ की माघ कृष्णा को आप स्वर्ग सिधारे। आप सरलात्मा तपस्वी व आगम मर्मज्ञ थे। अनेकों प्राणीयों का आप ने कल्याण किया।

चतुर्थ आचार्य महान साहित्यकार श्री जीतमल जी :

महान विद्वान, उच्च कोटि के साहित्यकार, प्रथम राजस्थानी जैन आगम टीकाकार आचार्य श्री जीतमल ने अल्पायु में संयम ग्रहण किया। बुद्धि इतनी तेज थी कि मात्र १४ वर्ष की आयु में संत गुणमाला ग्रंथ लिख डाला। आप ने साढ़े तीन लाख पद परिणाम राजस्थानी साहित्य रचा।

इन का दूसरा नाम जय आचार्य था। इन्होंने संघ में अनुशासन लाने में जी जान एक कर दिया। इन्हें भी काफी विरोधों का सामना करना पड़ा। पर तेरापंथ सम्प्रदाय में आगमों को सरल भाषा में प्रस्तुत कराने का श्रेय आप श्री को जाता है। आप राजस्थानी भाषा के महान विद्वान थे।

पंचमाचार्य श्री मधवागणि जी :

आप का जन्म १८१७ में चेत्र शुक्ल ११ को वीदांसर में हुआ। बचपन का नाम मेघराज था। पिता श्री

पुरणमल बेगवानी व माता वन्नों देवी थी। छोटी बहन गुलाब कंवर थी। जो वाद में साध्वी बनी।

संवत १९०८ में आप वीदासर में जयाचार्य के चरणों में आए। आप के दीक्षा के भावों को देख कर माता व वहन भी तैयार हो गए।

संवत् १९०८ को लाढ़नू में आप की दीक्षा सम्पन्न हुई। फाल्गुन कृष्ण पक्ष को माता व वहिन की दीक्षाएं हुई। आप को दो वार चेचक का रोग हुआ। आप सुख दुख में सम रहने वाले वीतराग संत थे। आप ने तेरापंथ में संस्कृत की पढाई प्रारम्भी की। इस के लिए आप को भागीरथ प्रयत्न करने पडे। आप को अनेकों संस्कृत ग्रंथ कण्ठास्थ थे। आगम, चूर्णि, निर्युक्ति ग्रंथ याद थे। आप एक वार जो पढ़ लेते, वह भूलते नहीं थे।

२४ वर्ष की अवस्था में आप युवाचार्य बने। वह १८ वर्ष इस पद पर रहे। संवत १९३८ भाद्र शुक्ला १२ से जयपूर में आप आचार्य पद पर विभूषित हुए। समस्त श्री संघ का विश्वास उन्हें प्राप्त था। सभी संघ उनकी आज्ञा मान कर स्वयं को अहोभागी समझता था।

संवत् १९४९ में रत्नगढ़ पधारे। वहीं वर्षावास अस्वस्थ अवस्था में वीता। चर्तुमास समाप्त कर आप सरदार शहर पधारे। महापर्व महोत्सव आनंद से वीता। संवत १९४९ की चैत्र कृष्णा को समाधि मरण से आप देवलोक पधारे।

षष्ठ आचार्य श्री माणकगणि जी :

आप का जन्म संवत १९१२ की भाद्र कृष्णा को जयपुर के जोहरी परिवार में श्री हुक्मचंद जी खारड व माता छोटा जी के यहां हुआ। वचपन में माता-पिता का स्वर्गवास होने के कारण इनका पालन पोषण लाला लक्षमण दास ने किया। लाला जी स्नेही धर्म निष्ठ और विशाल हृदय के

स्वामी थे। आप श्री बचपन से ही विनित व सरल स्वभाव के थे।

संवत् १९२५ में आप ने १६ वर्ष की आयु में श्री जयाचार्य की शरण जयपुर में ग्रहण की थी। वैराग्य के बीज अंकुरित होने लगे। गुरू ने शिष्य को हर दृष्टि से परखा। संवत् १९२८ फाल्गुण शुक्ल ११ को लाडनु में आचार्य श्री से साधू जीवन ग्रहण किया।

फिर सेवा, स्वाध्याय व तप में लग गए। संस्कृत, ग्रंथों का विधिवत् अध्ययन किया। आप महान आत्मा थे। आप ने जन सामान्य से १९३८ को तेरापंथ शासण की डोर संभाली। आप ने आम आदमी से लेकर राजा तक के लोगों को अपने उपदेशों से प्रभावित किया।

विधिवत् रूप से संवत् १९४९ को चेत्र कृष्णा ८ को आप का आचार्य पद महोत्सव मनाया गया। इनका आचार्य काल मात्र ५ वर्ष का ही रहा। संवत् १९५४ में उनका अंतिम चर्तुमास सुजानगढ़ में हुआ। मात्र ४२ वर्ष की अवस्था में आप अपनी साधना पूर्ण कर देवलोक पधारे।

सप्तम आचार्य श्री डालगणि जी म० :

तेरापंथ संम्प्रदाय के अष्टम आचार्य श्री डालगणि का जन्म संवत् १९०९ को आषाढ़ शुक्ला ४ को उज्जैनी नगरी में सेठ कनीराम जी व माता जडावा जी के यहां हुआ। बचपन में पिता का साया सिर से उठ गया। यह घटना उनके वैराग्य का कारण बनी। मां ने अपने बेटे का पालन शान शौकत व धर्मिक संस्कारों से किया।

मात्र ११ वर्ष की अवस्था में उनके मन में वैराग्य उमड़ पड़ा। संसार असार दिखाई देने लगा। पर माता का वैराग्य इन से कम नं था। इसी कारण ३ वर्ष पहले माता जी ने साध्वी भोमा जी से दीक्षा अंगीकार की। यह बात संवत्

१६२० की आषाढ़ शुक्ला १३ की है।

माता का प्रभाव पुत्र पर पड़ता है। बालक को वैराग्य के मार्ग पर बढना सरल हो गया। समस्त परिजनों व वैभव को छोड़ उन्होनें संवत् १६२३ की भाद्रपद कृष्णा १२ को संयम अंगीकार किया। आप की बुद्धि बहुत तीव्र थी ४ वर्ष तक वह जवाचार्य के सानिध्य में ज्ञान अर्जित करते रहे। वह शास्त्र मर्मज्ञ हो गये। उन्हें कई आगम कण्ठस्थ थे। संस्कृत व राजस्थानी के अनेको श्लोक को कण्ठस्थ किया। वह महान वक्ता बने। इन्हीं योग्यताओं के कारण संवत् १६३० को वह अग्रणी बनाए गए। आप का समय धर्म चर्चाओं का युग था। इन चर्चाओं का आप ने समभाव से सामना किया।

आप ने राजस्थान, मध्यप्रदेश, कच्छ, गुजरात व सौराष्ट्र के गांव गांव जाकर धर्म प्रचार किया। आप अपनी परम्परा के रक्षक आचार्य थे। आप ने अनेकों लोगों को संयम के मार्ग पर लगाया। संवत १६५४ माघ कृष्णा १२ को आन श्री को आचार्य पद प्रदान किया गया। आप महान आचार्य थे। इस प्रकार लोगों के जीवन का निर्माण करते हुए अपने चरण कमल से धरती को पवित्र करते हुए आप लाडनू पधारे। जहां आप के दो चर्तुमास हुए। संवत् १६६६ की भाद्रपद शुक्ला १२ को आप का देवलोक हुआ।

अष्टम आचार्य श्री कालुगणी जी :

आप का जन्म संवत् १६३३ की फाल्गुण शुक्ला २ को बीकानेर राज्य के जालछापर गांव के कोठारी परिवार में हुआ। पिता का नाम श्री मूलचंद व माता का नाम छोगा जी था। आप अकेली संतान थे। आप का शरीर बहुत सुंदर था। अल्पायु में पिता का साया सिर से उठ गया। पूर्व जन्म

के पुण्य के संस्कार थे कि मात्र १२ वर्ष की आयु में आप ने आपकी मौसी की लड़की व माता ने आचार्य मघवागणी के चरणों में संयम अंगीकार किया। यह घटना संवत १९४४ के आश्विन शुक्ला ३ की है।

जन्म के समय ज्योतिष्यों ने सुन्दर भविष्यवाणी की थी और इनके दादा को इनके सुन्दर भविष्य के बारे में बताया था। लगभग १२ वर्ष तक आप कठोर अनुशासन में शिक्षा ग्रहण करते रहे। आप गुरू आज्ञा को भगवत् आज्ञा मानने वाले थे।

मुनि कालुगणि जी संवत् १९६६ की भाद्रपद शुक्ला १२ को आचार्य डालगणि के स्वर्ग सिधारते ही इस परम्परा के अष्टम आचार्य बन गए। आप की इच्छा आचार्य पद की प्राप्ति नहीं थी वह तो संयम को श्रेष्ट मानते थे। पर श्री संघ की आज्ञा को शिरोधार्य कर आप ने इस पद को स्वीकार किया।

आप ने आचार्य बनते ही तेरापंथ संघ में संस्कृत की पढ़ाई की। मुनियों व साध्वीयों को भी अग्रसर किया। पं. घनश्याम जैसे ब्राहमण को तैयार किया, ताकि वह जघ्न मुनियों को व्याकरण पढाएं। आप ने प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य पंड़ित रघुनन्दन की सहायता से दो महान ग्रंथ भिक्षु शब्दानुशासन और कालूकोमदी की रचना अपने शिष्य मुनि चोथ मल्ल से करवाई। आप ने अनेकों प्राचीन श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन, तुलनात्मक दृष्टि से स्वंयं किया। दूसरे मुनियों व साध्वीयों को भी करवाया। आप ने अनेकों विदेशी विदवानों को भी प्रभावित किया।

राजस्थान राज्य के विभिन्न नरेशों व दरवारों में आप के ज्ञान की चर्चा थी। यह नरेश सहज रूप से आप

से प्रभावित थे। आप ने पुराने व नए क्षेत्रों में धर्म प्रचार किया। अधिकांश पुराने साधु साध्वी आप द्वारा दीक्षित हैं। तेरापंथ संघ में अच्छी वढोतरी हुई। आप ने सभी विरोधों को हंस कर सहा।

आप गुणों का भण्डार थे। आगम मर्मज्ञ थे। आप ने दीक्षा संवंधी कानून के वारे में त्तकालीन समाज सरकार को विश्वास में लिया। आप के शिष्य शिष्याओं की संख्या और उनका अर्जित ज्ञान, दोनों ही आप की महानता को दर्शाते हैं।

नवम आचार्य तुलसी जी व वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञ जी आप के गुण गाते नहीं थकते थे। वह अपनी सारी उपलब्धियों का श्रेय आप को देते हैं। आप का यश तेरामंथ का ही नहीं समस्त जैन धर्म का यश है। जो सर्वत्र व्यापत है। आप का स्वर्गवास ६० वर्ष की आयु में संवत् १९९३ को भाद्रपद शुक्ला ६ को हुआ।

नवम आचार्य, युग प्रधान, गणधिपति आचार्य श्री तुलसी जी :

जैन धर्म में तेरापंथ सम्प्रदाय को अपनी अलग पहचान दिलाने वाले अंर्तराष्ट्रीय संत आचार्य श्री तुलसी जी का जन्म २० अक्टूवर १९१४ को लाडनू के एक संपन्न जैन परिवार में हुआ। सारा परिवार धार्मिक था। माता पिता भाई वहन सभी धर्म के प्रति समर्पित थे। उन्हें घर में दीक्षा के योग्य वातावरण सहज रूप में प्राप्त हुआ। पिता के स्वर्गवास के वाद आप को संसार में विरक्ति हो गई।

घर वालों ने आप की दीक्षा का कुछ विरोध किया पर आप आचार्य कालुगणीं जी की शरण में आ गए। वह अल्पायू में ही कवि, आगम मर्मज्ञ, वैयाकरण, वहुभाषा विध वन गए। उन्होंने जैन तेरापंथ धर्म संघ में फैला

पिछड़ापन दूर किया। सारे भारत की उन्होंने २ से ज्यादा यात्राएं की। तेरापंथ सम्प्रदाय में उन्हें वृद्ध साधुओं की सेवा, ममुक्ष केन्द्र की स्थापना, संघ एकजुटता, अणुव्रत अन्दोलन, प्रेक्षा ध्यान व समण समणी वर्ग की स्थापना जैसे स्वर्णिम कार्य किए। इन कार्यों ने इन्हें अंतर्राष्ट्रीय संत व जैन धर्म का प्रभावक आचार्य बना दिया। उन्होंने अपने साधुओं व साध्वियों को ज्ञान, कला व धर्म प्रचार के कार्य में लगाया। अणुव्रत के माध्यम से तेरापंथ साधु-साध्वीयां स्कूल जैल, कालेज व खुले मंच द्वारा नैतिकता का अभियान चलाने लगे। इस अभियान को भारत के हर राष्ट्रीय नेता ने सराहा। यही नहीं उन्होंने समाज की कमजोरी जैन एकता की ओर ध्यान दिया। इस कारण सभी जैन सम्प्रदायों के साधू साध्वीयां इकट्ठे प्रवचन करने लगे। भगवान महावीर के २५०० साला निर्वाण उत्सव पर उन्होंने जैन विश्वभारती लाडनू (विश्वविद्यालय) की स्थापना की। यह विद्यालय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म का प्रमुख शिक्षण संस्थान है। विदेशों में धर्म प्रचार के लिए उन्होंने समण व समणी वर्ग की स्थापना की है। यह वर्ग साधु व गृहस्थ के बीच सेतु का कार्य करता है। इनका आहार, विहार व निहार खुला है। बाकी चर्या साधुओं जैसी है। आप ने ध्यान की विधि प्रेक्षा ध्यान का विकास किया, यह विधि पहले लुप्त हो चुकी थी।

आचार्य तुलसी हिन्दी, राजस्थानी, प्राकृत, व संस्कृत के लेखक थे। उन्होंने आगम वाचना का कार्य सम्पन्न किया। फिर सभी आप्म शुद्ध पाठों सहित प्रकाशित किए। उन्होंने तेरापंथ संबंधी फैले कई भ्रमों को दूर किया। माता जी, भाई साहिब, व बहन दीपा ने संयम ग्रहण किया।

ऐसे क्षेत्र जहां जैन धर्म को कोई नहीं जानता था वहां उन्होंने खुले प्रवचन स्वयं किये। साधु साध्वीयों को ऐसा

करने का आदेश दिया। अणुव्रत के कारण भारतीय राजनीतिज्ञ आप से बहुत प्रभावित थे। भारत के उपराष्ट्रपति राधाकृष्णण ने आप को अभिवंदन ग्रंथ भेंट किया था।

वह अनुशासन प्रिय थे। एक बार अस्वस्थ अवस्था में उन्होंने आचार्य पद का भार मुनि नथ मल्ल जी को दिया। जो स्वयं प्रसिद्ध साहित्यकार, आगमज्ञ, ध्यानस्थ योगी हैं। आप उन्होंने ने स्वेच्छा से आचार्य पद त्याग दिया। ऐसा उदाहरण जैन इतिहास में कम ही मिलता है। उन्होंने धर्म प्रचार के सभी आधुनिक साधनों का उपयोग संयम में रहते हुए किया।

आचार्य तुलसी एक महान प्रभावक आचार्य थे। ऐसा आचार्य कभी कभी पैदा होता है। मुझे भी आप के दर्शन कई बार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका विशाल शिष्य परिवार था। उनका धर्म संघ आज्ञाकारी है। उनका अनुशासन कठोर था। उनके राजनेताओं से मधुर संबंध थे। समाचार पत्रों में अपने साक्षातकारों के कारण समाचार पत्रों में छाए रहते थे।

आप के समय तेरापंथ का व्यापक प्रचार जो पंजाब में हुआ, उनके प्रयत्नों का फल था। उनके शिष्यों ने उनकी आज्ञा को प्रभु की आज्ञा माना। वह आचार्य तुलसी का जीवन बहुआयामी व पूर्ण था। उनका व्यक्तित्व हर स्थान पर अपनी छाप छोड़ गया है। मुझे अनेकों बार आप से बात करने का सुअवसर मिला है। वह मेरे व मेरे धर्मभ्राता रविन्द्र जैन के साहित्यक कार्यों का सम्मान करते थे। उन्होंने श्री उतराध्ययन सूत्र के पंजाबी अनुवाद को अपना आर्शीवाद दिया। आपने नेपाल, आसाम, कर्नाटक, तेलंगाना, उड़ीसा, बिहार, गुजरात, राजस्थान, जम्मू कश्मीर, आंध्रा, तामिलनाडू, में धर्म ध्वज फहराया। आपने समस्त भारतवर्ष के अतिरिक्त

अपने समण-समणी वर्ग के माध्यम से जैन धर्म को विश्वधर्म वनाया। संवत् १९९७ को आप को स्वर्गवास वांगापुर सिटी में हुआ।

दशम आचार्य महाप्रज्ञ जी :

आप आचार्य श्री तुलसी जी के आज्ञानुव्रती शिष्य हैं। आप सरस्वती पुत्र हैं। आप अपने गुरू के समान सरल, भव्य व्यक्तित्व के धनी, महान साहित्यकार, योगी, प्रेक्षा ध्यान के संस्थापक हैं। सैंकडों ग्रंथों का निर्माण आपके हाथों से हुआ है। आप जैन धर्म के विश्व स्तरीय विद्वान हैं। आप के वारे में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। आप आचार्य श्री तुलसी जी के साथ साए की तरह रहे। स्वाध्याय, चिंतन, मनन, ध्यान साहित्य, आगमों का तुलनात्मक अध्ययन आप की प्रमुख उपलब्धियां हैं। आप ने अपने गुरू का नाम इस ढंग से रौशन किया कि समझ ही नहीं आता कि कौन से कार्य आचार्य तुलसी ने किये हैं और कौन से कार्य आचार्य महाप्रज्ञ ने। आप महावक्ता, तपस्वी, अनुशासन प्रिय हैं। सव से वडी वात है आप का अपने गुरू के प्रति प्रेम। आप वहुभाषा विध, आगम मर्मज्ञ, इतिहासकार, सर्व धर्मों के जानकार हैं। आप वृद्ध अवस्था में भी तरूण जैसी स्फूर्ति के स्वामी हैं। समाज को आप से वहुत अपेक्षाएं हैं। आप भविष्य दृष्टा, संघ के कार्यों के प्रति जागरूक हैं। इसी जागरूकता का प्रमाण है उनका उतराधिकारी का चयन। उन्होंने आचार्य पद संभालते ही जहां आचार्य तुलसी जी की क्रान्ति को आगे वढाते हुए वहुत से संस्थान मानव जाति को प्रदान किए वहां शिक्षा, सेवा, ध्यान शिविरों का क्रम शुरू किया। आप यात्रा कर सारे भारत का भ्रमण करते रहे हैं।

मैनें अपनी वात शुरू करने से पहले तेरापंथ का परिचय इस लिए दिया, ताकि मैं वता सकूं कि मुझे सम्यक्त्व